



Date: 11-06-24

For plurality

CSDS-Lokniti's post-poll survey showed exhaustion with Hindutva politics

Editorial

A drop in satisfaction levels with governance, the stagnating popularity of Prime Minister Narendra Modi, the resilience of regional parties and the rejuvenation of the Congress party, and the fading of Hindutva for marginalised sections in the Hindi heartland. All these contributed to the National Democratic Alliance's reduced majority in the 2024 general election, according to the CSDS-Lokniti's post-poll survey. In its pre-poll survey, the agency had indicated that "unemployment" and "price rise" were key issues for a majority of the electorate and despite the healthy 46% support for the NDA, a chunk of those favouring the incumbents were willing to back the Opposition during the course of the election. The final vote share for the NDA, at 43.6%, was 1.4 points lower than what the constituents of this year's coalition received in 2019 even as the INDIA bloc secured a significant 41.4% support (if the Trinamool Congress's shares are included), a leap from 2019. In the previous Lok Sabha election, the Balakot action, the PM-Kisan scheme and 10% reservation for the Economically Weaker Sections category had helped the Bharatiya Janata Party romp home with 303 seats, according to Lokniti. But this time around, multiple narratives and political issues tied the party down in its strongholds. Even its ascendance in Odisha and Telangana was not enough to recoup its losses in the Hindi heartland.

The strong support by Dalits, other OBCs and minorities to the Congress in States such as Uttar Pradesh, and the Samajwadi Party's terming the BJP's agenda as a threat to the Constitution put the wind in the Opposition's sails. That Congress leader Rahul Gandhi enjoyed a four-point lead (36% versus 32%) over Mr. Modi among respondents in Uttar Pradesh, when asked about their preference for the Prime Minister's post, must alarm the BJP. Clearly, the party can no longer expect to rely on Hindutva as a cementing factor except in States such as Uttarakhand, Gujarat, Madhya Pradesh and Chhattisgarh, which are distinguished by a lack of a diligent Opposition. For the INDIA bloc, and the Congress in particular, its credible performance notwithstanding, its task is cut out in these States. The Congress also increased its vote share in Karnataka from what it was in the 2023 Assembly elections, but the NDA's strong social coalition proved a hindrance in converting those increased votes into more seats. The message for the Opposition is clear — wherever it is in power, it must strive to provide a clear alternative to the NDA in terms of governance. And where it is not in power, it must rely on building unity among like-minded forces and a narrative of bringing change through alternative policies that offer a strong contrast to the centralising and unitary nature of the BJP.

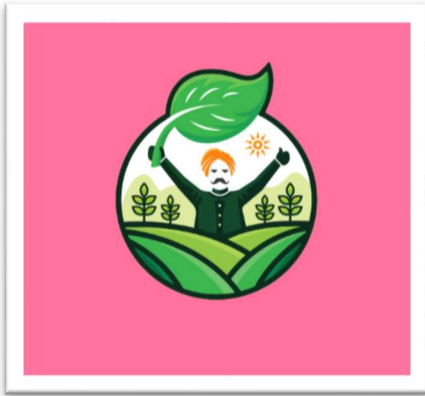


दैनिक भास्कर

Date: 11-06-24

साझा सरकार में सहयोगियों की अपनी प्राथमिकताएं हैं

संपादकीय



शपथ के बाद प्रधानमंत्री का पहला फैसला किसान सम्मान निधि की किस्त जारी करना रहा। कल्याणकारी राज्य में गवर्नेस के तीन आयाम होते हैं- आर्थिक और विदेश नीतियां, प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष लाभकारी योजनाएं और राजनीतिक हित साधन वाले कदम। साझा सरकार में क्षेत्रीय सहयोगी दलों को इससे मतलब नहीं होता कि पूंजीगत निवेश ज्यादा हो या रेपो रेट घटे, या फिर डब्ल्यूटीओ में भारत का स्टैंड क्या है। उनकी चिंता होती है कि केंद्र किसानों की उपज एमएसपी पर खरीदे, उसका मूल्य बढ़ाए और कपास, प्याज, गेहूं-चावल या चीनी का निर्यात न रोके। इसी तरह केंद्र की लाभकारी योजना के खर्च में अगर राज्य की भी देयता है तो योजना का श्रेय केवल केंद्र या प्रधानमंत्री को न मिले। घटक दल नहीं चाहेंगे

कि केंद्र सरकार ऐसे 'एजेंडा' जारी रखे जो सम्प्रदाय - विशेष को लक्षित करके बनें जैसे समान नागरिक संहिता या अल्पसंख्यक-विरोधी आख्यान। इनमें से अधिकांश घटक दल अपने राज्यों में मुस्लिम वोट के आधार पर चुनाव जीतते हैं। फिर अगर ये केंद्र पर इन मुद्दों को लेकर मुखर नहीं होंगे तो राज्य के विपक्षी दल अल्पसंख्यकों को बरगलाएंगे। बिहार में जेडीयू को बैकवर्ड और मुस्लिम वोट बैंक चाहिए जबकि आंध्र में दोनों क्षेत्रीय दल - टीडीपी और वाईएसआरसीपी - का भी यही वोट बैंक है। इन सब से ज्यादा गंभीर मसला होगा 'एक राष्ट्र, एक चुनाव' की योजना। भले ही भाजपा के स्पिन- डॉक्टर्स कह रहे हों कि बगैर संविधान संशोधन के सामान्य कानून बनाकर इस योजना को अमल में लाया जा सकता हो, लेकिन संविधान की औसत समझ वाला भी जानता है कि इसके लिए कम कम से कम तीन संविधान संशोधन जरूरी होंगे, जो संसद में बिना दो-तिहाई बहुमत संभव नहीं। सरकार के लिए अगले पांच साल चुनौती भरे होंगे।

Date: 11-06-24

सोशल मीडिया के जरिए उभर रही है न्याय की नई संस्कृति

मेघना पंत, पुरस्कृत लेखिका, पत्रकार और वक्ता



क्या इंसान की जिंदगी सस्ती होती है? या इंसान नहीं तो कम से कम वेतनभोगी वर्ग के जीवन की कीमत नहीं है? शक्तिशाली और अमीर लोगों की तुलना में क्या वो कमतर हैं? तब उनके प्रतिनिधित्व की जिम्मेदारी किसकी है? पुणे में कुछ समय पूर्व हुई पोर्श हादसे वाली घटना इन्हीं सब सवालों को जन्म देती है।

यह मामला हर पल उलझता चला गया था। ऐसा लग रहा था, जैसे किसी क्राइम-नॉवल के ब्योरे लिखे जा रहे हों, क्योंकि उन्हें सिस्टम की सभी खामियों के बारे में पहले से ही पता था। सबूतों से छेड़छाड़ से लेकर जालसाजी, अपहरण, धमकी, रिश्वत, फरारी तक- इस मामले ने हमारे सिस्टम में परिवार, न्यायपालिका, पुलिस, मेडिकल, सेवा क्षेत्र सभी जगह मौजूद सड़ांध का पिटारा खोल दिया। ये सभी 'ब्रैट-

कल्चर' (उद्दंडों की संस्कृति) के दायरे में नजर आए।

लेकिन एक अच्छी बात भी है, जिसमें इसका समाधान है। याद रखें कि अगर सोशल मीडिया नहीं होता तो यह मामला भी एक और 'दुर्घटना' के रूप में बंद हो जाता। लेकिन अब ट्रायल-बाय-मीडिया की शक्ति न्याय को युक्तिसंगत बनाए रखती है और आशा बंधाती है।

देश के युवा कैंसल-कल्चर से ज्यादा इसमें रुचि रखते हैं कि चीजों के सकारात्मक परिणाम कैसे मिलें। और यही कारण है कि पुणे का मामला 'ब्रैट-कल्चर' के अंत का संकेत दे सकता है। यदि आप अपराध करते हैं, तो सोशल मीडिया सुनिश्चित करेगा कि आपको सजा मिले! युवाओं के पास यही शक्ति है।

चाहे आप कोई भी हों, जो भी करते हों, आप सबसे अमीर और सबसे शक्तिशाली लोगों को भी उनके किसी अपराध के लिए घुटनों पर ला सकते हैं। परिपक्व होने का एक हिस्सा यह सीखना है कि हम जो कुछ भी करते हैं, उसके परिणाम भी हमें ही भुगतने हैं।

याद रखें, कोई भी यह नहीं कह रहा है कि अपनी धन-दौलत से सुख-सुविधाओं का आनंद न लें। आग्रह इतना ही है कि इसे जिम्मेदारी के साथ करें, दूसरों के जीवन और आजीविका की कीमत पर इसे न होने दें। बड़ी ताकत के साथ बड़ी जिम्मेदारी भी आती है।

सोशल मीडिया को वह सुधार करने दें, जिसमें हमारी न्यायपालिका, समाज और हमारे परिवार पूरी तरह से कर पाने में असमर्थ रहे हैं। सच कहूं तो पुणे की घटना 1970 के दशक की बॉलीवुड मसाला फिल्मों की याद दिलाने वाला थी, जिसमें एक बिगड़ैल अमीरजादा मजदूर वर्ग को कुचल देता है, और सिस्टम उसको दंडित करने के बजाय उसके सुपर-रिच होने के कारण उसे दुलारता है।

कड़वी सच्चाई यह है कि भारत में कोई भी कानून से नहीं डरता। अगर ऐसा होता, तो ऐसी स्थिति निर्मित नहीं होती, जिसमें माता-पिता अपने 17 वर्षीय बेटे को पोर्श जैसी कार उपहार में देते और उसे लाइसेंस न होने के बावजूद गाड़ी चलाने की अनुमति देते। न ही वे उसे अपने दोस्तों के साथ पार्टी करने के लिए बेशुमार पैसा देते (इतना पैसा, जो मजदूर वर्ग के महीनों के वेतन के बराबर है)।

इतना ही नहीं, उन्होंने अपने बेटे को यह भी सिखाया कि अगर उसके हाथों कोई अनर्थ हो जाए, तो सिचुएशन को कैसे हैंडल करना है। लेकिन क्या उन्होंने उसे पीड़ितों के परिवार से माफी मांगने की मानवता और बुनियादी शालीनता भी सिखाई? नहीं! इस मामले में तीन व्यवस्थागत विफलताएं सामने आई थीं- व्यक्तिगत, सामाजिक, कानूनी। लड़कों को कानून-व्यवस्था, समाज-परिवार द्वारा दंड से मुक्ति दी जाती है, इसीलिए वे बड़े होकर अपराधी बनते हैं।

हम बेहतर परवरिश कैसे कर सकते हैं? कानूनी खामियों को कैसे रोक सकते हैं? हम इस भयावह मामले को उन सभी लोगों के लिए चेतावनी की कहानी में कैसे बदल सकते हैं, जो सोचते हैं कि वे कानून से ऊपर हैं? जो पैसे और भ्रष्टाचार में इतने अंधे हो गए हैं कि उन्हें लगता है कि वे जो चाहे कर सकते हैं और उन्हें कुछ नहीं होगा? उन लोगों को दंडित कैसे करें, जो समाचारों का शोर खत्म होने के बाद बच निकलते हैं? सोशल मीडिया से इन सवालों के जवाब निकल रहे हैं।



Date: 11-06-24

संघ की शक्ति

संपादकीय

यूरोपीय संघ के चुनाव में इस बार बड़ी उलट-फेर देखने को मिली है। दक्षिणपंथी रुझान वाले दलों को शानदार कामयाबी मिली है। इसे देखते हुए जर्मनी और फ्रांस जैसे देशों के सत्ताधारी दलों की घबराहट बढ़ गई है। हार की आशंका से फ्रांस के राष्ट्रपति इमैनुअल मैक्रों ने तो राष्ट्रीय संसद भंग कर मध्यावधि चुनाव की घोषणा कर दी है। सत्ताईस सदस्य देशों वाले यूरोपीय संघ में जर्मनी सबसे बड़ा देश है। वहां की 'अल्टरनेटिव फार जर्मनी' पार्टी मजबूत होकर उभरी है। हालांकि उसके कई शीर्ष उम्मीदवारों के नाम घोटालों में शामिल थे, मगर उसके बावजूद पार्टी का मत प्रतिशत बढ़ा। पार्टी ने 2019 में ग्यारह फीसद मत हासिल किए थे, जो इस बार बढ़ कर साढ़े सोलह फीसद हो गए। वहीं जर्मनी के सत्तारूढ़ गठबंधन में तीन दलों का संयुक्त मत मुश्किल से तीस फीसद से ऊपर रहा। इस तरह 'अल्टरनेटिव फार जर्मनी' ने देश के चांसलर ओलाफ शोलज की 'सोशल डेमोक्रेट्स' पार्टी को मात देने के लिए पर्याप्त सीटें जुटा ली हैं। जर्मनी में दक्षिणपंथ के इस उभार को कुछ लोग हिटलर के नाजी उभार के रूप में देख रहे हैं। यूरोपीय संघ यूरोप के सत्ताईस देशों का संगठन है, जिसकी संसद के लिए करीब चालीस करोड़ लोग मतदान करते हैं। यही संसद यूरोपीय देशों की आर्थिक विकास, वाणिज्य - व्यापार, राजनयिक, आप्रवासन आदि से जुड़ी नीतियां तय करती है। इसलिए दुनिया के तमाम देशों की नजर इसके चुनाव पर रहती है यूरोपीय संघ में दक्षिणपंथी रुझान वाले दलों का दबदबा बढ़ने से वाणिज्य-व्यापार, आप्रवासन आदि को लेकर कुछ देशों की चिंताएं बढ़ गई हैं। दक्षिणपंथी रुझान वाली सरकारों में देखा गया है कि वे राष्ट्रवादी नीतियों पर अधिक जोर देती हैं। यूरोपीय संघ आयोग की अध्यक्ष उर्सुला वान डेर लेन की पार्टी 'क्रिश्चियन डेमोक्रेट्स' ने चुनावों से पहले ही दक्षिणपंथी रुझान के उभार को भांप लिया था और प्रवासन और जलवायु के मुद्दे पर और अधिक दक्षिणपंथी रुख अपना लिया था, जिसके कारण यूरोपीय संसद में उनकी पार्टी अब तक की सबसे बड़ी पार्टी

बन गई है। भारत के लिए भी इसे इसलिए चिंता का विषय माना जा सकता है कि उन देशों में बड़ी संख्या में भारतीय नागरिक रोजगार आदि के लिए जाते हैं।
